International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746, Impact Factor: RJIF 5.34
www.alleducationjournal.com
Volume 1; Issue 4; April 2016; Page No. 79-80

ध्वनिसम्प्रदाय का काव्यशास्त्रिय अध्ययन

प्रदीप तिवारी

Sanskrit Dept. Mithila Sanskrit Research Institute, Darbhanga, Bihar, India

ध्वनिसम्प्रदाय का उदयः–

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"[1]

मुनि प्रवर भरत ने नाट्यशास्त्र में यद्यपि ध्वनिशब्द का काव्य सर्वस्व के हेतु के लिये अर्थात् काव्यात्मा के लिये प्रयोग अप्राप्य है। परन्तु उक्त सूत्र के माध्यम से उन्होंने सब कुछ अभिव्यक्त किया है, जिसे उनके परवर्ती आचार्य श्री आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में पल्लवित और पुष्पित कर प्रखरित किया है।

योऽर्थःसहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।[2]

सहृदय पाठक आदि काव्य को जिस अर्थ की प्रशंसा करते हैं, कवि के काव्य में, वही अर्थ उसकी कृति का जीवनाधायक तत्व होता है। ग्रन्थकार का विश्वास है कि वही अर्थ काव्य की आत्मा है, प्राण है। जीवात्मतत्त्व तो अगोचर तत्त्व है, कैसे समझा जाये? अर्थात् रमणी का लावण्य भी अगोचर ही कहा जायेगा, तो वह जैसे समझा जायेगा, वैसे ही काव्यात्मा भी समझा जाता है–

प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभातिलावण्यभिवनासु।[3]

मुनिवर वाल्मीकि बहेलिया के बाण से मृत क्रौंच के वियोग से व्याकुल क्रौंची के विलाप को देख–सुनकर वे द्रवित–अन्तःकरण के हो गये और क्रौंची का शोक उनके वाणी में श्लोक बनकर फूट निकला–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

कवि के के इस श्लोक में उसी अर्थ का अनुभव होता है, काव्य को जो अर्थ सहृदयश्लाघ्य है। इसी से अर्थात् उक्त सहृदयश्लाघ्य अर्थ से श्री आनन्दवर्धनाचार्य ऊपर कहे अपने सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं–

काव्यस्यात्मा स एवार्थो यथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।।[4]

महाकवियों और कवियों की कृतियाँ, सहृदयजन जिस अर्थ के साथ तन्मय होते हैं, वह अर्थ, लोकसामान्य अर्थ से भिन्न होता है–

..... सचेतसां सोऽर्थो वाच्यार्थविमुखात्मनाम्।[5]
बुद्धौ तत्त्वार्थदर्शिन्यां झटित्येवावभासते।।[6]

सहृदयों की तत्त्वार्थदर्शिनी वृद्धि द्वारा ग्राह्य अर्थ ही कवि के काव्य में जीवनाधायकतत्त्व होता है, वही काव्य विशेष है, काव्यविशेष ही–

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः 'स' ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।[7]

कवि व्यापार काव्य में वाचकवाच्य शब्दार्थ के स्वस्वव्यापार से विरत होने के पश्चात् जिस अर्थ की प्रतीति सहृदय को होती है, वही अर्थ काव्य विशेष है, अर्थात् ध्वनि काव्य है। वही काव्यात्मा है–

काव्यस्यात्मा ध्वनिरितिबुधैर्यः समाम्नातपूर्वः।।[8]

सूरिभिः बुधैश्च भरतमुनिभिः वैयाकरणैश्च पूर्व में ''विभावानुभावव्यभिचारि– संयोगाद्रसनिष्पत्तिः सूत्र द्वारा भरतमुनि ने उक्त अर्थ ही सन्दर्भित किया है। आचार्य मम्मट ने उक्त का सूत्रपात निम्न प्रकार से किया है–

इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः।।[9]

"बुधैःवैयाकरणैः'' प्राचीन वैयाकरण मनीषियों ने शब्द से अर्थ की, अवगति के लिये स्फोटवाद की स्फोट सिद्धान्त की स्थापना की। वाणी के चार सोपान पार कर वैखरी होता है। शास्त्र, काव्य और लोकव्यवहार वैखरीमूलक हैं।

परा वाङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा।।

शब्द स्फोट से व्यवहारगत वाणी सुनी जाती है, वह श्रूयमाण है। "स्फुटति अर्थः यस्मात् स स्फोटः" जिस ध्वनि से अर्थावगति होती है, वह स्फोट है। अतः प्रतीतपदार्थ को लोके ध्वनिः–शब्द–उच्यते। अतः वैयाकरण घट–पटादि के वर्णों के लिये 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग करते हैं। घ् अट् अ में स्फोट की परिकल्पना की गयी है। स्फोट आठ प्रकार का कहा गया है। व्याकरणशस्त्र में अर्थबोध के लिये प्रधान रूप स्फोट के लिये "ध्वनि" शब्द का प्रयोग किया है, उसी प्रकार प्रधानभूत व्यार्थ के बोध के लिये श्री आनन्दवर्धनाचार्य ने साहित्यशास्त्र में "ध्वनि" शब्द का प्रयोग किया है।[10]

अतः वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ के शान्त होने के बाद, अन्य जिस चित्त के चमत्कारी अन्य अर्थ की अवगति होती है, वही अर्थ ध्वनि है। काव्य के ध्वन्यर्थ अथवा व्ययार्थ की स्थापना अथवा ध्वन्यर्थोदय होने के साथ ही, इस "ध्वनि" के विरूद्ध विरोधियों ने भी लेखनी संभाली और ध्वनि के विरोध में लिखना प्रारम्भ किये।

अर्थबोध प्रक्रिया में चार प्रकार के शब्द (1) वाचक (2) लाक्षणिक (3) व्यञ्जक (4) तात्पर्यार्थक कहे गये हैं। उसी प्रकार चार प्रकार के अर्थ (1) वाच्यार्थ (2) लक्ष्यार्थ (3) व्यंग्यार्थ (4) तात्पर्यार्थ और उसी प्रकार शब्द और अर्थ के बीच में होने वाले व्यापार भी चार प्रकार के माने गये हैं। (1) अभिधाव्यापार, (2) लक्षणाव्यापार, (3) व्यञ्जना व्यापार, (4) तात्पर्याव्यापार हैं। व्यापार को ही वृत्ति शब्द से भी अभिहित किया गया है, जैसे (1) अभिधावृत्ति, (2) लक्षणावृत्ति, (3) व्यञ्जनावृत्ति, (4) तत्पर्यावृत्ति चार वृत्तियाँ, व्यापार या शक्ति हैं। वृत्ति, व्यापार को शक्ति भी कहा गया है, जैसे अभिधाशक्ति आदि। श्रीमम्मटाचार्य ने उक्त को स्पष्ट किया है–

स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यञ्जकस्त्रिधा।
वाच्यादयस्तदर्थाः स्युस्तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्।।

"अत्र व्यंजकः" से सूचित किया है कि व्यञ्जक शब्द, व्यंजनावृत्ति और व्यंग्यार्थ, यह विषय साहित्यशास्त्र की विशिष्टतम् तत्त्व है। अन्य शास्त्रों में इसका व्यवहार नहीं होता है। श्रीवीरनारायण ने अपने

साहित्यचिन्तामणि ग्रन्थ में ध्वनिविषयक विप्रतिपत्तियों का निम्न प्रकार से उल्लेख किया है–

ध्वनिर्नास्तीत्याहुः कतिचिदपरे भाक्तमितरे,
त्वनिर्वाच्यं वाच्यं कतिचिदनुमेयं च कतिचित्।
इति प्रायः प्राचां विमतिषु भवन्तीषु बहुधा
स्वरूपं तस्यार्थो निपुणमभिधास्येऽहमधुना।।[11]

ध्वनि–अभाववादः–

ध्वनि नाम का कोई तत्त्व अर्थावगम में है ही नहीं। ठीक है ध्वनि तत्त्व नहीं है, तो आप प्रतीत ध्वनि का निषेध कर रहे हैं, अथवा अप्रतीत ध्वनि का निषेध कर रहे हैं? प्रमित पक्ष में सर्वत्र निषेध कर रहे हैं यानि ध्वनि का कहीं–कहीं निषेध कर रहे हैं? यदि कहीं–कहीं निषेध कर रहे हैं,तो सिद्ध साधन दोष आपत्ति होगा, क्योंकि साहित्य में ध्वनि का सम्बन्ध के बल वाच्यार्थ से ही नहीं होता है, यदि आप ध्वनि का निषेध व्यापक रूप से या सर्वथा कर रहे हैं, तो प्रमाणित या ज्ञात का सर्वत्र निषेध व्याघात करना होगा। ध्वनि आरोपित पदार्थ नहीं है, आरोपित का अनारोपित पूर्वक होना आवश्यक है, ध्वनि की सत्ता व्याकरणशास्त्र में तो प्रमाणित ही है। "ध्वनिर्नास्ति" यह आपका कथन ही विरोधाभासकर है। "ध्वनिः यह विधान करते हैं और "नास्ति" से निषेध करते हैं, यह आपका कथन ही परस्पर विरोधी है। परस्पर विरोधी तत्त्व एकाधिकरण में नहीं रहते, जैसे प्रकाश और अन्धकार। "ध्वनिर्नास्ति" इस अपने कथन के पक्ष में आप किस देशविशेष औरकाल विशेष का भी संकेत नहीं कर रहे हैं। अतः आपका ध्वनि का निषेध दिवा दिनमणेर्निषेध इवेति।

ध्वनि का अन्तर्भाववादः–

माना कि ध्वनि है तो यह आपका काव्यात्मा ध्वनि काव्य को किसी प्रकार की कमनीयता प्रदान करता है? अथवा यों ही ध्वनि है? यदि ध्वनि काव्य में किसी प्रकार के लालित्य को नहीं लाता है, तो ध्वनि को ग्रहण करना व्यर्थ है और यदि आपका ध्वनितत्त्व काव्य के सौन्दर्य का संबर्धक है, तब तो इस ध्वनि को गुण में अथवा अलंकार में समाहित कर लीजिये, व्यर्थ में एक और परिकल्पना कर भार ढोना अच्छा नहीं कहा जायेगा।

उक्त आप का कथन और परामर्श अवश्य विचारणीय है। आप अनुमान का आश्रय लेकर कहते हैं–

"ध्वनिर्न गुणालंकारेभ्यो व्यतिरिच्यते चारूत्वहेतुत्वात्, यत् पुनः गुणालंकारेभ्यो व्यतिरिच्यते, न तच्चारुत्वहेतुः, अविमृष्टाविधेयांश–दोषवत्, चारुताहेतुश्चायं ततो न व्यतिरिच्यते तेभ्यः।"[12]

ध्वनि को गुण में या अलंकार में कहीं समाहित कर लीजिये, क्योंकि काव्य में चारुताधायक गुण और अलंकार ही हैं। परामर्श उचित है, परन्तु अब यह स्पष्ट करने का कष्ट करें कि यदि गुण काव्य में चारूता के आधायक हैं, और अलंकार चारूता के आधायक हैं, चारुता के दोनों आधायक हैं, तो क्यों न अलंकार को गुण में समाहित कर लिया जाये, अथवा गुण को अलंकार में समाहित कर लिया जाये, इसी में एक का चयन लाघवकर होगा।

परामर्श आपका भी विचारणीय है। परन्तु यह सम्भव नहीं हो सकता, क्योंकि गुण काव्य की आभ्यन्तरिक कमनीयता का संबंर्धन करते हैं और अलंकार काव्य के बाह्य सौन्दर्य का संवर्धन करते हैं। अतः दोनों भिन्न धर्म के होने से एक नहीं हो सकते।

आपने सत्य ही कहा, गुण और अलंकार भिन्न स्वभाव के तत्त्व हैं, अतः दो विजातीय तत्त्वों को एक नहीं माना जा सकता। आप यही स्पष्ट करने का कष्ट करें कि काव्य की आभ्यन्तरिक कमनीयता क्या है? कमनीय का धर्म ही तो कमनीयता है? अथवा अन्य पदार्थ है? यदि कमनीय का गुण–धर्म कमनीयता है, तो काव्य में कमनीय कौन है? काव्य के कमनीय तत्त्व का सहृदय जन ही आस्वादन करते हैं वे ही उस तत्त्व के ज्ञाता कहे जा सकते हैं, परन्तु उन्होंने उसका न स्वरूप निर्धारित किया है और नामकरण ही किया है, अतः वह काव्य का कमनीय तत्त्व काव्य का जीव कहा जा सकता है और जीवतत्त्व यद्यपि जीवनधायक है, परन्तु वह नीव अदृश्य तत्त्व है, देखा नहीं जा सकता, सुना जा सकता है। परन्तु जीवतत्त्व की विवेचना वेदों ने तो पर्याप्त रूप में की है? परन्तु उसका स्वरूप निर्धारित करना कठिन है। आप की यह स्वीकारोक्ति तथ्य को सुस्पष्ट करने वाली है। आपने कमनीय तत्त्व को काव्य का नीव कहा है। मैं भी आप से सहमत हूँ। काव्य की सहृदजन आस्वाद्य कमनीयता काव्य के जीव का धर्म है। मैं भी आप से सहमत हूँ। काव्य का जीवतत्त्व देखा नहीं सुना जा सकता है। आपके इस वक्तव्य का भी मैं समर्थन करता हूँ। उसका स्वरूप निर्धारित करना कठिन है, मैं प्रायः समर्थन करता हूँ। अब आप मेरी बात सुनें–

जिसे आप काव्य का जीव मानकर कमनीय कहते हैं, मैं उसे काव्य की आत्मा कहता हूँ। सहृदयजन आस्वाद्य काव्य की कमनीयता काव्यात्मा का धर्म है, गुण है, जैसे दयादाक्षिण्यादि। काव्य का आत्मतत्त्व अनुभवगम्य है, वह देखा नहीं जा सकता, परन्तु सुनते सभी हैं, अनुभव केवल सहृदय करते हैं। उसका स्वरूप निर्धारित करना कठिन अवश्य है। अब आप ध्यान दें, मैंने आपके उसी कठिन कार्य को बोधगम्य किया है और उक्त विशेषण विशिष्ट कमनीय को "ध्वनि" कहा है, वहीं काव्य की आत्मा है, आप मेरे व्यसापार से सहमत हैं या नहीं? अब विवाद ही कहाँ है।

भक्तिवादः–

भक्तिवादी से प्रश्न है क्या भक्ति और व्यक्ति दोनों का सम्बन्ध है, दोनों अभिन्न हैं? या भक्ति व्यक्ति का उपलक्षण है, समानार्थक है, पर्यायवाची है? भक्ति और व्यक्ति में तादात्म्य नहीं हो सकता, क्योंकि भक्ति में मुख्यार्थ बाधा का अनुसन्धान किया जाता है और व्यक्ति में वक्तृबोद्ध व्यादि वैषिष्ट्य का अवगाहन किया जाता है, अतः दोनों का अधिकरण या आधार भिन्न है। अतः भक्ति और व्यक्ति भिन्न हैं। भक्ति व्यक्ति का उपलक्षण भी नहीं हो सकती है। श्री वीरनारायण के शब्दों में–

भक्ति व्यक्तिमिथोभिन्ने विरूद्धधर्माधिकरणत्वात् यद्यद्विरूद्धधर्माधिकरणं तत्तन्मिथो भिन्नम्, घटपटादिवदिति। न द्वितीयः, लक्षणस्य केवलव्यतिरेकित्वात्, एवं किलानुमानरचना, व्यतिरेकिभ्यो भिद्यते न तत् भक्तिमत् यथाभिधादिः। तथा च सत्याभिधैकमूले ध्वनौ भक्तेरभावात् भागासिद्धो हेतुः। व्यक्तेरितरेभ्यो भिन्नत्वे साध्ये अस्य हेतोरितरभिन्नतेति विवेचकत्वमात्रं लक्षयति कुशलादौ रूढेऽपि क्वचिद् गतत्वाद् विरुद्धत्वमपि। न तृतीयः विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनौ।

संदर्भ–सूची

1. नाट्यशास्त्र षष्ठाध्याय।
2. ध्वन्यालोक 1/2
3. ध्वन्यालोक 1/4
4. ध्वन्यालोक 1/5
5. ध्वन्यालोक 1/12
6. ध्वन्यालोक 1/13
7. ध्वन्यालोक 1/1
8. काव्य प्रकाश 1/4
9. काव्य प्रकाशवृत्ति 1/4
10. काव्यप्रकाशवृत्ति 1/4
11. साहित्यचिन्तामणि 1/10
12. साहित्यचिन्तामणि 1/10